समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श के प्रभाव

प्राप्तिः 05.05.2026
स्वीकृतः 08.06.2026

50

डॉ अमृता कुमारी
पीएचडी., नेट (जे0आर0एफ0)
ईमेलः *amrita13387@gmail.com*

सारांश

समकालीन हिंदी साहित्य ने भारतीय महिलाओं की स्थिति को 'अबला' से 'सशक्त' रूप में पुनर्परिभाषित करने में अहम भूमिका निभाई है। मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, और मैत्री कालिया अनामिका जैसी लेखिकाओं ने पतिसन्ता, यौन स्वतंत्रता, और अस्मिता के मुद्दों को प्रमुखता से उठकर सामाजिक दृष्टिकोण को बदलता और नारीवादी चेतन को सशक्त किया। पितृतसत्तात्मक ढ़ांचे को चुनौती देते हुए नारी अस्मिता, देह की मुक्ति, आर्थिक आत्मनिर्भरता और निर्णय लेने की स्वतंत्रता पर केंद्रित विभिन्न उपन्यासों की नायिकाओं के माध्यम से स्त्री के संघर्ष, आम्सम्मान, अस्मिता की खोज तथा सामाजिक बंधनों से मुक्ति की आकांक्षा को दर्शाया गया है। आधुनिक स्त्री अपनी स्वतंत्र पहचान स्थापित करने और आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर है। लेख यह भी स्पष्ट करता है कि भारतीय स्त्री विमर्श का उद्देश्य पुरुष के साथ समानता और सह–अस्तित्व स्थापित करना है। पितृसत्तात्मक रूढ़ियों का विरोध साहित्य ने पारंपरिक विवाह संस्थाओं, घरेलू हिंसा, और सामाजिक असमानताओं पर तीखे सवाल उठाए हैं। अस्मिता और स्वतंत्रता की खोज नारी पात्र अब सिर्फ सहनशील नहीं, बल्कि अपने अस्तित्व, करियर और शारीरिक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करती दिखाई देती हैं। अनुभवों की अभिव्यक्ति से महिला लेखिकाओं ने अपने निजी और सामाजिक अनुभवों जैसे–देह मुक्ति, कामकाजी जीवन को खुलकर साझा किया है, जिससे स्त्री के प्रति समाज का दृष्टिकोण बदला है। नई नारी छवि से साहित्य ने अबला के स्थान पर शिक्षित, आत्मनिर्भर और जागरूक नारी की छवि स्थापित की है। डिजिटल और यथार्थवादी लेखन समकालीन लेखन में स्त्री विमर्श अब केवल कहानी नहीं, बल्कि समाज में बदलाव का एक उपकरण बन गया है, जो ब्लॉग और सोशल मीडिया के माध्यम से भी मुखर हो रहा है।

मुख्य शब्द

स्त्री विमर्श, पितृसत्तात्मक व्यवस्था, स्त्री अस्मिता, आत्मसंघर्ष, सामाजिक बंधन, आर्थिक स्वतंत्रता, स्त्री सशक्तिकरण, समकालीन हिंदी उपन्यास, नारी चेतना, लैंगिक समानता।

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2026.v17i02.050

परिचय

''आजादी के लगभग छह दशक बीत जाने के बाद भी भारतीय समाज और उसका परिवेश अनेक नई समस्याओं में ग्रस्त है। इन समस्याओं के कारण जीवन के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में आए तेज परिवर्तनों को नजरअंदाज करना सामान्य बात नहीं है। साहित्य परिवेश की देन है, इसलिए अपने पूरे परिवेश से जुड़कर साहित्य–रचना करना एक जागरूक और संवेदनशील रचनाकार के लिए अत्यंत आवश्यक होता है। कहना न होगा कि ऐसी स्थिति में साहित्यकार सामाजिक विसंगतियों को ध्यान में रखकर रचनाएँ प्रस्तुत करता है। जिस रचनाकार में अपने परिवेश को पकड़ने की जितनी क्षमता होती है–''उत्कट लालसा और समसामयिक समस्याओं की जितनी गहरी पहचान होगी, उसकी रचना उतनी ही अधिक प्रासंगिक, समसामयिक और कालजयी होगी।

'समकालीन' भारतीय साहित्य में स्त्री–विमर्श भारतीय समाज की विसंगतियों की उपज है। इसमें पहली बात यह है कि स्त्रियाँ अपने प्रति किए जाने वाले अन्याय का प्रतिकार करें, और यह तत्व प्रत्येक स्त्री में विद्यमान रहता है। आज के बदलते हुए परिवेश में स्त्रियों से जुड़े सवालों को अनदेखा करना अब संभव नहीं रह गया है, क्योंकि इसमें असंख्य लोगों की कम या अधिक भागीदारी है। साहित्यकार युग का प्रतिनिधि होता है। अतः उसकी रचनाओं में युगीन स्थितियों और समसामयिक परिस्थितियों का प्रभाव स्पष्ट रूप से बना रहता है। काल, संदर्भ, प्रकरण और परिस्थितियों को समझे बिना, इतिहास और संस्कृति में गहराई से उतरे बिना किसी रचना को खारिज कर देना या किसी प्रथा–परंपरा पर प्रहार करना उचित नहीं है। उदाहरणार्थ, सती–प्रथा तत्कालीन युग की एक सामाजिक व्यवस्था थी। उस समय उसे स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था, लेकिन आज यदि कोई सती–प्रथा को प्रोत्साहित करे या उसके समर्थन में खड़ा हो, तो वह निंदनीय है। इसी प्रकार, उस समय की परंपराओं का अंधानुकरण करना भी उचित नहीं है।

'स्त्री–विमर्श' एक मूल्य है, एक आंदोलन है, जिसने साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों, कहानियों और कविताओं में अपनी स्पष्ट पहचान बनाई है। यह स्त्री की चेतना, आक्रोश, पीड़ा, वेदना, घुटन, छटपटाहट तथा शोषण–उत्पीड़न के विविध रूपों को गंभीरता और आत्मीयता के साथ अभिव्यक्त करता है। स्त्री–विमर्श को नारीवाद या स्त्रीवाद भी कहा जाता है, जिसमें स्त्री के हितों और अधिकारों पर विचार–विमर्श किया जाता है। 1975 के बाद के हिन्दी साहित्य पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट होता है कि स्त्री समस्याओं के प्रति जागरूक दृष्टिकोण अपनाकर स्त्रियों की स्थिति सुधारने के प्रयास किए गए हैं। मानव समाज में स्त्रियों की संख्या लगभग 50 प्रतिशत है। वे पुरुषों के साथ हजारों वर्षों से जीवन व्यतीत कर रही हैं, किन्तु इतिहास पर दृष्टि डालने से स्पष्ट होता है कि स्त्रियों के अस्तित्व को प्रायः नकारा गया है। आज कुछ वर्षों से स्त्रियों की समस्याओं और परिस्थितियों के संदर्भ में गंभीर अध्ययन किया जा रहा है। स्त्री के व्यक्तित्व के निर्माण के लिए संघर्ष जारी है। चाहे स्त्री पाश्चात्य समाज की हो या भारतीय, उसे अपने अस्तित्व के लिए लंबे समय तक संघर्ष करना पड़ा है। भारतीय स्त्री मुक्ति के संघर्ष में विभिन्न समाज–सुधारकों, सामाजिक संस्थाओं और साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

समाज में स्त्री के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना तथा उसके स्वत्व और अस्तित्व को स्थापित करने के प्रयास ही स्त्रीवाद हैं। स्त्रीवादी विचारधारा से प्रभावित साहित्य को स्त्रीवादी

साहित्य कहा जाता है। नारी के व्यक्तित्व की पहचान के लिए अनेक आंदोलन चलाए गए हैं, जिनका मुख्य उद्देश्य स्त्री के लिए एक बेहतर और न्यायपूर्ण भविष्य का निर्माण करना है। स्त्री को निष्पक्ष न्याय और उसके प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण स्थापित करने के लिए समाज में व्याप्त लिंगभेद को समाप्त करना आवश्यक है। स्त्री की वर्तमान स्थिति के पीछे केवल उसका स्त्री–जन्म नहीं है, बल्कि उसके आसपास का सामाजिक, पारिवारिक और सांस्कृतिक परिवेश उसकी मानसिकता को आकार देता है।

स्त्रीवाद का स्वरूप

प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखिका सिमोन द बोउवार ने नारी की स्थिति को स्पष्ट करते हुए द सेकंड सेक्स नामक पुस्तक लिखी। उन्होंने यहाँ नारी संबंधी विचार व्यापक रूप में प्रस्तुत किए। सबसे पहले तो उन्होंने स्त्री के स्त्री होने को स्वाभाविक रूप से स्वीकार नहीं किया। समाज का परिवेश और परिवार ही नारी को नारी बनाए रखने के लिए जिम्मेदार हैं। सिमोन ने कहा है–"औरत पैदा नहीं होती, बल्कि बनाई जाती है।" पुरुष–प्रधान सामाजिक व्यवस्था बचपन से ही एक लड़की को स्त्रीत्व के गुण सिखाकर तथाकथित आदर्श नारी के रूप में ढालती रहती है। इस आदर्श के विरोध में जो व्यवहार करती है, उसे यह व्यवस्था भटकी हुई या "औरत नहीं रही" कहकर निंदा करती है। परंपरा से नारी का जो रूप प्रस्तुत किया जा रहा है, क्या वह सही है ? इसकी तलाश करना आवश्यक है और यही तलाश स्त्रीवाद है।

सिमोन ने यह भी प्रश्न उठाया कि– "आज की दुनिया में औरत का सही और वास्तविक स्वरूप क्या है? वास्तव में उसका कौन–सा दर्जा होना चाहिए ?''1941 में उठाए गए इन प्रश्नों के उत्तर आज भी स्त्री–मुक्ति विचारधारा को स्वीकार करने वाले लोग खोज रहे हैं। नारी के परंपरागत रूप को ही आज भी प्रस्तुत किया जाता है। परिणामस्वरूप नारी के प्रति चली आ रही मानसिकता और विचारध ाारा में अपेक्षित परिवर्तन नहीं हो पाया है। उसे परंपरागत बंधनों के घेरे से बाहर निकालकर एक मानव के रूप में प्रस्तुत करना आवश्यक है। यह व्यवस्था उसे साधन के रूप में प्रस्तुत करती रही है, जबकि नारी को मानव के रूप में स्थापित करना ही स्त्रीवाद का प्रमुख ध्येय है।

सिमोन के अनुसार– "जब हम 'मानव' शब्द का उच्चारण करते हैं, तो उसमें पुरुष और स्त्री दोनों शामिल होते हैं।"समाज में नारी को कनिष्ठ दर्जा दिया गया है और उसके विकास में अनेक बाधाएँ उत्पन्न की जाती हैं। उसकी इस गौण स्थिति में परिवर्तन कर उसे पुरुष के समान स्थान देना ही स्त्रीवाद है। पाश्चात्य चिंतक लिंडा गॉर्डन के शब्दों में–"नारीवाद नारी के गौण स्थान का विश्लेषण मात्र है, जिसका उद्देश्य उसकी स्थिति में परिवर्तन लाना है।"सभी रुकावटों को पार कर नारी अपने स्वयं के विकास के लिए आज प्रयत्नरत है। इसके लिए उसे संघर्ष का सामना करना पड़ता है। पाश्चात्य विद्वान एलिस जार्डिन के अनुसार "नारीवाद स्त्रियों की दृष्टि से स्त्रियों के लिए किया गया आंदोलन है।"नारी की स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए सबसे पहले उसे केवल शरीर के रूप में नहीं, बल्कि एक पूर्ण मानव के रूप में देखना आवश्यक है। पुरुष–प्रधान संस्कृति में स्त्री को भोग की वस्तु के रूप में देखा गया है, जिसे बदलना अत्यंत आवश्यक है।

"नर और नारी की मानसिक भिन्नता का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि यह भिन्नता केवल शारीरिक संरचना के कारण नहीं है, बल्कि सामाजिक परिवेश, पारिवारिक स्थिति, संस्कार और

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2026.v17i02.050

मूल्य भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जन्म से लेकर बचपन तक स्त्री और पुरुष की मानसिकता में कोई विशेष अंतर नहीं होता।" समाज की इसी मानसिकता में परिवर्तन की प्रक्रिया का प्रभाव साहित्य पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। साहित्य के माध्यम से स्त्री के स्वत्व की पहचान कराने के प्रयासों को ही स्त्रीवाद या स्त्री–विमर्श कहा जाता है। मूलतः अमेरिका में विकसित स्त्रीवाद का प्रसार 1960 के बाद तीव्र गति से हुआ। 1975 के अंतरराष्ट्रीय महिला वर्ष के बाद स्त्री–मुक्ति आंदोलन और स्त्रीवादी विचारधारा को नई दिशा प्राप्त हुई। समाज व्यवस्था ने लिंगभेद के आधार पर स्त्री को निम्न स्थान प्रदान किया था, जिस पर गंभीर विचार–विमर्श हुआ।

प्रारंभिक काल में स्त्रियों के पास अनेक अधिकार थे, किन्तु जब मातृसत्तात्मक व्यवस्था का स्थान पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने ले लिया, तब स्त्रियों की स्थिति कमजोर हो गई। धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में उनकी भागीदारी सीमित स्त्री विमर्श ने स्त्री–पाठ और स्त्रीवाद के ज्वलंत सवालों को समाज के सामने रखा है। स्त्री विमर्श ने ही स्त्री की स्थिति का स्पष्ट विवेचन किया है कि किस तरह पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्त्री को दयनीय स्थिति में बनाए रखती है। स्त्री विमर्ष ने पितृसत्तात्मक मूल्यों, मान्यताओं और वर्जनाओं के बारे में अनेक सवाल उठाए हैं, जो स्त्री को वाणीहीन, आत्महीन और स्वतंत्र अस्तित्व से वंचित करते हैं। स्त्री संघर्ष ने वास्तव में पितृसत्तात्मक व्यवस्था की वास्तविक तस्वीर को सामने रखा है, जिसमें स्त्री को अनुकूलित करके शोषण के ढाँचे में ढाल दिया जाता है। सिमोन द बोउवार कहती हैं– "औरत को औरत होना सिखाया जाता है और बनी रहने के लिए उसे अनुकूल बनाया जाता है। तथ्यों के विश्लेषण से समझ में आएगा कि प्रत्येक मानव स्त्री अनिवार्यतः औरत नहीं है, यदि वह औरत होना चाहती है, तो उसे औरत होने की वास्तविकता से परिचित होना पड़ेगा। "स्त्री की दयनीय अवस्था के लिए पितृसत्तात्मक सोच ही जिम्मेदार है। चंद्रकांता के 'अपने–अपने कोणार्क' उपन्यास की नायिका कुनी एक प्राध्यापिका है। पारंपरिक अंधविश्वासों में फंसी होने के कारण उसके लिए जीवनसाथी खोजना कठिन हो जाता है, क्योंकि उसकी जन्मकुंडली के योग के कारण उसे समय पर योग्य वर नहीं मिल पाता। वह एक प्रकार से पराश्रित स्त्री है। उसे अपने बारे में स्वयं निर्णय लेने की स्वतंत्रता नहीं है। कुनी अपने बारे में कहती है– "मैं बत्तीस बरसों से कई शापों से बंधी रही हूँ। रक्षकशील परिवार में जन्म लेने का शाप, घर की बड़ी बेटी होने का शाप, या शायद अपने यहाँ उम्रदराज लड़की होने का शाप ही काफी है अंधी खोह में बंद हो जाने के लिए।"वह इस माहौल से बाहर निकलना चाहती है, लेकिन जब तक वह निर्णय लेती है, समय बहुत आगे बढ़ चुका होता है और वह पीछे छूट जाती है। मधु कांकरिया के 'सेज पर संस्कृत' उपन्यास में स्त्री जीवन मूल्यों को दर्शाया गया है। उपन्यास की नायिका संगमित्रा सामाजिक विसंगतियों का विरोध इन शब्दों में करती है "नहीं सर, मैं इस जिंदगी में लौट नहीं सकती। यदि मैं आत्महीन हो गई, मेरा स्वाभिमान पराजित हो गया, तो मैं कितनी दूर जा पाऊँगी ? जब जीवन ही हाथ से निकल जाए, तो जीविका लेकर क्या करूँगी ?" आज समाज में बलात्कार और अपहरण जैसी घटनाएँ बढ़ती जा रही हैं। वास्तव में स्त्री का पहला संघर्ष अपनी अस्मिता को प्राप्त करने का है। कृष्णा सोबती के 'सूरजमुखी अंधेरे के' में पीड़ित स्त्री के जीवन के आत्मसंघर्ष का मार्मिक चित्रण है। नायिका सत्ती अविवाहित स्त्री है, जिसके जीवन में अनेक पुरुष आते हैं, किंतु बचपन का शोषण उसके जीवन को अभिशप्त बना देता है और वह जीवनभर विद्रोह करती रहती है।

भारतीय स्त्री को पुरुष से अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। वह पुरुष में अच्छाई–बुराई दोनों को पहचानती है, फिर भी कई बार बुराई को परंपरा का हिस्सा मान लेती है।

भारतीय स्त्री के लिए उसका परिवार अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। वह परिवार के भीतर रहकर ही स्वतंत्रता प्राप्त करने का प्रयास करती है। आज की स्त्री निर्णय लेने की शक्ति और आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहती है, क्योंकि यही वह साधन है जिससे वह स्वयं को पुरुष के समकक्ष खड़ा कर सकती है। इसी कारण भारत में स्त्री की स्थिति में जो परिवर्तन आया है, उससे वह पुरुषों से सहयोग ले सकी है। समस्याओं को केवल स्त्री का मुद्दा न मानकर उन्हें अन्य व्यापक मुद्दों के साथ जोड़ना संभव हुआ है। यही अंतर पाश्चात्य स्त्रीवाद और भारतीय स्त्रीवाद में है कि भारतीय स्त्री अपने अधिकारों की लड़ाई उग्रता से न लड़कर संयमित रूप अपनाती हुई दिखाई देती है।

डॉ, उषा यादव के शब्दों में–"आज का यथार्थ भी यही है कि जैसे–जैसे आदमी के पास भौतिक सुख–सुविधाएँ बढ़ रही हैं, वैसे–वैसे उसके मन का सुख और आत्मा की शांति समाप्त होती जा रही है। आदमी की यही उदासी, ऊब, अकेलापन और घुटन संवेदनशील कथाकार उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में भावपूर्ण शैली में व्यक्त हुई है। "उषा प्रियंवदा के 'पचपन खंभे लाल दीवारें' उपन्यास की नायिका सुषमा आधुनिक स्त्री के आत्मसंघर्ष का प्रतिनिधित्व करती है। वह एक सुंदर, शिक्षित और कार्यरत स्त्री है, लेकिन अकेलेपन की अनुभूति उसे व्यथित करती है। उसके चारों ओर जिम्मेदारियों, परिवार, पद और मर्यादा की दीवारें खड़ी हैं।उस पर पूरे परिवार का भार है–पक्षाघात से पीड़ित पिता, माँ, बहनें और भाई–सबकी जिम्मेदारी उसी पर है। वह कहती है "मैं जो करती हूँ, कर्तव्य समझकर नहीं, बल्कि उनके प्रति प्रेम के कारण करती हूँ। "इसी कारण वह अविवाहित रह जाती है। वह अपने प्रेमी नील से कहती है"मेरी बहुत सारी जिम्मेदारियाँ हैं–पक्षाघात से पीड़ित बाबू, दो बहनें और दो भाई–सब मुझे ही संभालना है। "इस प्रकार इस उपन्यास में सुषमा के जीवन की घुटन और संघर्ष का चित्रण हुआ है। 'समय सरगम' उपन्यास की नायिका आरन्या को भी अनेक प्रकार के संघर्षों का सामना करना पड़ता है। वह अकेली स्त्री है, उम्रदराज होने के बावजूद मानसिक रूप से मजबूत है। वह अकेलेपन, मृत्यु और सामाजिक समस्याओं को जीवन का हिस्सा मानकर स्वीकार करती है।वह कहती है–"संतुष्ट हूँ कि जीवित हूँ। मृत्यु से डरती नही, उसे जीवन का अनिवार्य सत्य मानती हूँ। "इसी उपन्यास में अन्य पात्र भी अकेलेपन की पीड़ा को दर्शाते हैं। उषा प्रियंवदा के 'रुकेगी नहीं राधिका' उपन्यास में आत्मसंघर्ष का सशक्त चित्रण है। राधिका एक स्वतंत्र व्यक्तित्व की युवती है, जो जीवन में हर स्तर पर स्वतंत्रता चाहती है। लेकिन उसे सबसे पहला विरोध अपने पिता से ही मिलता है। वह एक विदेशी पत्रकार से विवाह कर विदेश जाना चाहती है, परंतु पिता इसकी अनुमति नहीं देते। इस कारण उसके भीतर निरंतर मानसिक संघर्ष चलता रहता है। बचपन से पिता के स्नेह में पली होने के कारण उसका व्यक्तित्व मानसिक जटिलताओं से प्रभावित हो जाता है और वह जीवन में पूर्ण सुख प्राप्त नहीं कर पाती।

प्रमुख महिला लेखिकाएँ

21वीं सदी की प्रमुख महिला लेखिकाओं में अनामिका, गीतांजलि श्री, मैत्रेयी पुष्पा और ममता कालिया जैसी लेखिकाएँ शामिल हैं। इन लेखिकाओं ने अपने लेखन के माध्यम से समाज के विभिन्न पहलुओं को उजागर किया है और साहित्य को समृद्ध बनाया है।

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2026.v17i02.050

अनामिका

अनामिका एक प्रमुख हिंदी कवयित्री और लेखिका हैं। उनकी कविताएँ महिलाओं के अनुभवों और संघर्षों का सजीव चित्रण करती हैं। उनका कविता–संग्रह "टोकरी में दिगंत" विशेष रूप से सराहा गया है।

गीतांजलि श्री

गीतांजलि श्री का उपन्यास रेत समाधि आधुनिक भारतीय समाज की जटिलताओं को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है। उनकी लेखन शैली और विषयवस्तु दोनों ही अनूठी हैं। उनके उपन्यास "रेत समाधि" और "हमारा शहर उस बरस" में महिलाओं के जीवन, उनकी परिस्थितियों और सामाजिक मुद्दों को प्रमुखता से दर्शाया गया है।

मैत्रेयी पुष्पा

मैत्रेयी पुष्पा की कहानियाँ और उपन्यास ग्रामीण भारत की महिलाओं के जीवन की कठोर सच्चाइयों को उजागर करते हैं। "इदत्रमम्" और "चाक" उनके महत्वपूर्ण कार्यों में शामिल हैं। उनकी रचनाओं में महिलाएँ अपनी पहचान और अस्तित्व की लड़ाई लड़ती हुई दिखाई देती हैं। उन्होंने सामाजिक कुरीतियों और पितृसत्तात्मक ढाँचे को चुनौती दी है।

ममता कालिया

ममता कालिया एक प्रसिद्ध कहानीकार और उपन्यासकार हैं। उनकी रचनाएँ समाज के विभिन्न वर्गों और स्त्रियों के संघर्षों को प्रस्तुत करती हैं। "बेघर","दुखमुक्ति" और "एक पत्नी के नोट्स" जैसी रचनाएँ समाज में महिलाओं की स्थिति और उनकी समस्याओं को उजागर करती हैं।

सामाजिक मुद्दों पर ध्यान

महिला लेखिकाएँ समाज में व्याप्त विभिन्न सामाजिक मुद्दों पर खुलकर लिख रही हैं। उनके लेखन में पितृसत्तात्मक समाज, लैंगिक भेदभाव, घरेलू हिंसा और महिलाओं की सामाजिक स्थिति जैसे विषय प्रमुख रूप से सामने आते हैं।

इनके अतिरिक्त मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, शिवान, चित्रा मुद्गल, इंदु बाली और डॉ. जया परांजपे जैसी लेखिकाओं ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

मष्दुला गर्ग

मृदुला गर्ग का लेखन स्त्री मनोविज्ञान और उसके संघर्षों को गहराई से प्रस्तुत करता है। उनके उपन्यास "चितकोबरा" और "कठगुलाब" में महिलाओं के आंतरिक संघर्ष, भावनाएँ और समाज के प्रति उनका दृष्टिकोण प्रभावशाली रूप में उभरकर आता है।

कृश्णा सोबती

कृष्णा सोबती का साहित्यिक कार्य समाज में महिलाओं की स्थिति और उनके संघर्षों को प्रमुखता से प्रस्तुत करता है। ''सूरजमुखी अँधेरे के'' और ''जिंदगीनामा''"जैसी रचनाओं में उन्होंने महिलाओं के अधिकारों और स्वतंत्रता के मुद्दों को उठाया है।

डॉ– जया परांजपे के अनुसार, लिंग के आधार पर अनुभवों का विश्लेषण ही नारी–विमर्श है। नारी–जीवन और उसके शरीर पर नारी का अधिकार होना चाहिए। पुरुष द्वारा स्त्री का दमन और उत्पीड़न सदियों पुरानी समस्या है, परंतु आज की स्त्री अब दबकर रहने वाली नहीं है।

वर्तमान समाज में स्त्री के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन आवश्यक है। नारी–विमर्श इसी विचारधारा को प्रस्तुत करता है कि स्त्री को एक स्वतंत्र और पूर्ण मानव के रूप में स्वीकार किया जाए। आज की स्त्रियाँ न तो दासी बनकर जीना चाहती हैं और न ही पुरुषों पर आश्रित रहना चाहती हैं। वे केवल भोग की वस्तु नहीं हैं, बल्कि उनका व्यक्तित्व मानसिक और सामाजिक संघर्षों के माध्यम से विकसित हुआ है।

अतः स्त्री–लेखन एक सामाजिक चेतना से प्रेरित साहित्य है, जो स्त्रियों के मानवीय अधिकारों की संघर्षपूर्ण मांग करता है।

वैश्विक पहचान

हिंदी महिला लेखिकाओं के कार्यों का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद किया जा रहा है, जिससे उनके विचार और रचनाएँ वैश्विक मंच पर पहुँच रही हैं। इससे हिंदी साहित्य को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान मिली है और भारतीय साहित्य को वैश्विक साहित्यिक मंच पर महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है।

निष्कर्ष

हिंदी साहित्य में महिला लेखिकाओं का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने न केवल साहित्य को समृद्ध बनाया है, बल्कि समाज में जागरूकता और परिवर्तन लाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उनकी रचनाएँ समाज के विभिन्न पहलुओं को उजागर करती हैं और एक बेहतर भविष्य की दिशा में प्रेरित करती हैं।

सन्दर्भ

1. सिमोन द बोउवार – स्त्री उपेक्षिता, पृ0सं0–**23**
2. चंद्रकांता – अपने–अपने कोणार्क, पृ0सं0–**11**
3. वही, पृ0सं0–**21**
4. मधु कांकरिया – सेज पर संस्कृत, पृ0सं0–**159**
5. प्रभा खेतान – प्रगतिशील वसुधा, जुलाई–सितंबर 2008, पृ0सं0–**47**
6. डॉ– उषा यादव – हिंदी की महिला उपन्यासकारों की अमानवीय संवेदना, पृ0सं0–**77**
7. उषा प्रियंवदा – पचपन खंभे लाल दीवारें, पृ0सं0–**100**
8. आर– सिंह – ''गीतांजलि श्री के उपन्यासों में महिला पात्रों का सशक्तिकरण।''"हिंदी साहित्य प्रवाह, 2020, 12(1), पृ0सं0–**45–58**।
9. पी– कुमार – ''मैत्रेयी पुष्पा के कथा लेखन में सामाजिक मुद्दे और महिला अधिकार।'" आधुनिक हिंदी साहित्य, 2022, 18(3), पृ0सं0–**87–101**।
10. एम– तिवारी (2023) – "ममता कालिया की रचनाओं में महिला शिक्षा और समाज पर प्रभाव।" साहित्यिक चिंतन, 10(4), पृ0सं0–**152–165**।
11. एन– षेख (2021)–"कृष्णा सोबती का प्रयोगात्मक लेखन और महिलाओं के सामाजिक संघर्ष।" साहित्य और समाज, 14(2), पृ0सं0–**110–123**।